

सूचित करने योग्य

भारत के सर्वोच्च न्यायालय में
दीवानी अपीलीय अधिकारिता
दीवानी अपील सं.1401/2019

के. एल. सुनेजा और अन्य

अपीलकर्ता/(गण)

बनाम्

डॉ. (श्रीमति) मंजीत कौर मोंगा (पुत्री) उनके कानूनी

प्रतिनिधि (हकदार) के माध्यम से एवं एक अन्य

उत्तरदाता/(गण)

के साथ

दीवानी अपील सं. 4530/2019

निर्णय

एस. रवींद्र भाट, न्यायमूर्ति

1. राष्ट्रीय कंपनी कानून अपीलीय न्यायाधिकरण (संक्षिप्त में "एन. सी. एल. ए. टी". "न्यायाधिकरण") के एक सामान्य आदेश के खिलाफ दो अपीलें दायर की जाती हैं। पहला, मूल घर खरीदार के कानूनी प्रतिनिधि (संक्षिप्त में, "शिकायतकर्ता") द्वारा और दूसरा (भवन निर्माता/निर्माणकर्ता संक्षिप्त में निर्माणकर्ता") द्वारा।
2. 1989 में, एक श्रीमती गुरशरण कौर ने वैशाली योजना, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश (संक्षिप्त में "योजना") में प्लॉट संख्या 24 पर स्थित 'सिद्धार्थ शिला अपार्टमेंट' नामक एक

प्रस्तावित समूह आवास योजना में एक फ्लैट के लिए आवेदन किया था। फ्लैट के लिए तीन किश्त जमा करने के बाद, उनकी मृत्यु हो गई, और उनकी बहू डॉ. (श्रीमती) मंजीत कौर मोंगा ने उनका स्थान लिया, जिन्होंने चौथी किश्त जमा की। इसके बाद, निर्माणकर्ता ने एक आवंटन पत्र दिनांक 21.05.1992 को, जिसमें फ्लैट नं. डी-301 (तीसरी मंजिल) 1375 वर्ग फीट के सुपर निर्मित क्षेत्र के साथ जारी किया। योजना में डॉ. मंजीत कौर मोंगा ने दो और किश्तें जमा कीं, और छठी किश्त सितंबर 1993 में जमा की गई। आठ साल बाद, यानी दिसंबर 2001 में, शिकायतकर्ता को आठवीं और नौवीं किश्तों के भुगतान के लिए एक मांग नोटिस जारी किया गया था। उन्होंने इस नोटिस का विरोध किया, क्योंकि काम की प्रगति और फ्लैट के कब्जे के बारे में उन्हें कोई सूचना नहीं दी गई थी। हालाँकि, निर्माणकर्ता ने इसके बाद एक पत्र जारी किया, जिसमें 30 अप्रैल 2005 को शिकायतकर्ता के फ्लैट के आवंटन को रद्द कर दिया गया। शिकायतकर्ता ने 4 अक्टूबर 1993 तक कुल ₹ 4,53,750-की सात किश्तें जमा की थीं। रद्द करने के पत्र के साथ, निर्माणकर्ता ने ₹ 4,53,750 के लिए 30 अप्रैल 2005 का एक भुगतान आदेश संलग्न किया-जो शिकायतकर्ता द्वारा फ्लैट के लिए किए गए भुगतान की पूरी वापसी के लिए सिटीबैंक द्वारा जारी किया गया था।

3. पीड़ित, शिकायतकर्ता ने अपने वकील के माध्यम से निर्माणकर्ता को 7 सितंबर 2005 को एक नोटिस जारी किया, जिसमें कहा गया था कि वह आवंटन पत्र के अनुरूप फ्लैट के लिए किश्तों का भुगतान करने के लिए हमेशा तैयार और इच्छुक थी, लेकिन निर्माणकर्ता ने स्वामित्व एवं निर्माण की गुणवत्ता के लिए डिलीवरी की समयबद्धता के संबंध में सौदेबाजी के अपने हिस्से को जारी नहीं रखा। नोटिस में आरोप लगाया गया कि निर्माण कार्य का 40 प्रतिशत भी सातवीं किश्त तक पूरा नहीं हुआ था, हालांकि शिकायतकर्ता ने कुल मिलाकर ₹ 4,53,750-का भुगतान किया था। उसने मुआवजे के रूप में ₹ 25,00,000 का दावा करने के अलावा फ्लैट के कब्जे की मांग की। नोटिस के साथ, शिकायतकर्ता ने ₹ 4,53,750-का भुगतान आदेश वापस कर दिया। उन्होंने फ्लैट की कीमत का भुगतान करने की इच्छा व्यक्त करते हुए ₹ 1,00,000 का एक चेक भी भेजा। निर्माणकर्ता ने 26 सितंबर 2005 को निर्माण में देरी के आरोपों से इनकार करते हुए नोटिस का जवाब दिया और शिकायतकर्ता पर किश्तों के भुगतान में चूक का आरोप

लगाया। हालांकि, निर्माणकर्ता ने गाजियाबाद विकास प्राधिकरण के साथ मुकदमेबाजी के कारण परियोजना को पूरा करने में थोड़ी देरी को स्वीकार किया।

4. डॉ. मंजीत कौर मोंगा ने (तत्कालीन) एकाधिकार और प्रतिबंधात्मक व्यापार व्यवहार अधिनियम, 1969 (संक्षेप में, "एम. आर. टी. पी. अधिनियम") की धारा 36 के तहत डेवलपर द्वारा अनुचित व्यापार व्यवहार का आरोप लगाते हुए शिकायत दर्ज कराई। शिकायत में फ्लैट या समान आकार और आयाम के एक वैकल्पिक फ्लैट के भौतिक कब्जे का दावा किया गया था। शिकायतकर्ता ने एम. आर. टी. पी. अधिनियम की धारा 12 ए के तहत भी आवेदन किया जिसमें निर्माणकर्ता को सिद्धार्थ शिला अपार्टमेंट में फ्लैट डी-301 को अलग करने से रोकने की मांग की गई। उन्होंने निर्माणकर्ता के हाथों अनुचित व्यापार व्यवहार का शिकार होने का आरोप लगाते हुए एम. आर. टी. पी. अधिनियम की धारा 12 बी के तहत ₹ 25,00,000 के क्षतिपूर्ती मुआवजे के पंचाट के लिए सी. ए. नंबर 39/2009 भी दायर किया। एम. आर. टी. पी. आयोग ने एम. आर. टी. पी. अधिनियम की धारा 12 ए के तहत दायर आवेदन का निपटारा कर दिया, जिसमें निर्माणकर्ता को फ्लैट के संबंध में तीसरे पक्ष का हित बनाने से रोका गया था। निर्माणकर्ता ने भी शिकायत का विरोध किया और दावा किया कि शिकायतकर्ता एम. आर. टी. पी. अधिनियम के तहत किसी भी राहत के लिए हकदार नहीं हैं। यह आगे आरोप लगाया गया कि शिकायतकर्ता आवंटन पत्र में योजना के अनुसार भुगतान जमा करने में विफल रही थी और उसने 22 मई 2002 के अपने पत्र के संदर्भ में, निर्माणकर्ता की ओर से विश्वासघात का आरोप लगाकर फ्लैट पर कब्जा करने के लिए अनिच्छा दिखाई थी। आयोग द्वारा जारी जांच की सूचना का इसी आधार पर विरोध किया गया था।

5. निर्णय के लिए मुद्दे तैयार किए गए थे, जिसमें यह शामिल था कि क्या निर्माणकर्ता अनुचित व्यापार व्यवहार में लिप्त था, क्या वे शिकायतकर्ता और/या आम जनता के हित के लिए प्रतिकूल थे। एम. आर. टी. पी. अधिनियम को प्रतिस्पर्धा अधिनियम, 2002 की धारा 66 द्वारा निरस्त कर दिया गया था जिसे 1 सितंबर 2009 से लागू किया गया था। बाद में प्रस्तुत अध्याय VIII-A में भारतीय प्रतिस्पर्धा आयोग द्वारा पारित आदेशों के खिलाफ अपीलों की सुनवाई के लिए एक अपीलीय न्यायाधिकरण की स्थापना का

प्रावधान किया गया है। एम. आर. टी. पी. आयोग के समक्ष लंबित मामलों को (तत्कालीन) प्रतिस्पर्धा अपीलीय न्यायाधिकरण (संक्षेप में, "कम्पैट") को स्थानांतरित कर दिया गया था। 29 जुलाई 2011 के आदेश द्वारा, ने एम. आर. टी. पी. अधिनियम की धारा 12 बी के तहत दायर आवेदन में मुद्दे तैयार किए। याचिका की पोषनीयता से संबंधित मुद्दे; क्या अनुचित व्यापार व्यवहार साबित हुआ था; और यदि ऐसा है, तो क्या वे जनता के लिए प्रतिकूल थे; और यह भी कि क्या शिकायतकर्ता किसी भी मुआवजे का हकदार था।

6. प्रस्तुत साक्ष्य को ध्यान में रखते हुए, कम्पैट ने अपने आदेश द्वारा निष्कर्ष निकाला कि निर्माणकर्ता ने आम जनता के सामने गलत तरीके से समय को प्रस्तुत किया था (शिकायतकर्ता सहित) जिसके भीतर परियोजना को पूरा किया जाना था, यानी तीन साल, लेकिन एक दशक से अधिक समय तक निर्माण पूरा नहीं किया। COMPAT ने डेवलपर को MRTTP अधिनियम की धारा 36-A (1) (i), (ii) और (ix) के तहत अनुचित व्यापार व्यवहार का दोषी ठहराया और यह भी फैसला सुनाया कि शिकायतकर्ता को आगे की किशतों का भुगतान नहीं करना उचित था और निर्माणकर्ता ने आवंटन रद्द करके अवैधता की। इस न्यायालय द्वारा गाजियाबाद विकास प्राधिकरण बनाम वेद प्रकाश अग्रवाल, में निर्धारित कानून के मद्दे नजर COMPAT अभिनिर्धारित कि यह और इसका पूर्ववर्ती (एम. आर. टी. पी. आयोग) एक दीवानी अदालत की शक्तियों को विशिष्ट प्रदर्शन के समान राहत देने के लिए ग्रहण नहीं कर सकता था। इसलिए, इसने फ्लैट के कब्जे के वितरण की राहत को अस्वीकार कर दिया। तथापि, कम्पैट ने निर्माणकर्ता को शिकायतकर्ता के कानूनी प्रतिनिधियों को प्रति वर्ष 15 प्रतिशत की दर से चक्रवृद्धि ब्याज का भुगतान करने का निर्देश दिया, जिसमें प्रत्येक किस्त पर गणना की गई ब्याज जमा करने की तारीख से 30 अप्रैल 2005 तक, यानी उस तारीख तक, जिस दिन आवंटन रद्द किया गया था। इसके अलावा, उत्तरदाताओं को शिकायतकर्ता द्वारा पहले से निवेश की गई राशि, यानी ₹ 4,53,750 का भुगतान शिकायतकर्ता के कानूनी प्रतिनिधियों को करने का निर्देश दिया गया था।

7. कॉम्पैट के आदेश को शिकायतकर्ता और विकासकर्ता दोनों ने इस अदालत के समक्ष अलग-अलग अपीलें के माध्यम से चुनौती दी थी, जिसने 18 जुलाई 2017 के

अपने आदेश से कम्पैट द्वारा अपनाए गए सूत्र के संदर्भ में शिकायतकर्ता के कानूनी प्रतिनिधियों को मुआवजे के निर्णय को बरकरार रखा। इस न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणी की:

"केवल इसलिए कि परिसमापन राशि न्यायाधिकरण द्वारा निर्दिष्ट या निर्धारित नहीं की गई है, यह नहीं कहा जा सकता है कि यह मुआवजा नहीं है। एक बार जब न्यायाधिकरण द्वारा आदेशित ब्याज की गणना की जाती है, तो यह अधिनियम की धारा 12-बी के तहत निर्दिष्ट मुआवजे की राशि होगी।

8. इस अदालत ने निर्माणकर्ता की इस दलील पर भी ध्यान दिया कि जब उसने 30 अप्रैल 2005 को सिटीबैंक से भुगतान आदेश लिया था, तो उस साधन द्वारा कवर की गई ₹ 4,53,750 की राशि उसके चालू खाते से काट ली गई थी। हालाँकि शिकायतकर्ता को यह प्राप्त नहीं हुआ था। खाताधारक/विकासकर्ता ने भुगतान आदेश को रद्द कर दिया और राशि को फिर से जमा करने का अनुरोध किया; जो सिटीबैंक द्वारा 22 जून 2016 को किया गया था। अदालत ने सिटीबैंक के इस तर्क पर भी ध्यान दिया कि अप्रैल 2005 में निर्माणकर्ता के चालू खाते से काटा गया पैसा, हालांकि प्राप्तकर्ता को भुगतान नहीं किया गया था, लेकिन बैंक द्वारा उपयोग नहीं किया गया था क्योंकि वेतन आदेश किसी भी समय प्रस्तुत किया जा सकता था। इस अदालत ने कहा कि इन दोनों मुद्दों पर कम्पैट द्वारा विचार नहीं किया गया था, जाहिरा तौर पर क्योंकि इन पहलुओं को संबोधित नहीं किया गया था और सिटीबैंक न्यायाधिकरण के समक्ष एक पक्ष नहीं था। इसलिए अदालत ने सिटीबैंक को एक अतिरिक्त प्रतिवादी के रूप में शामिल करने के निर्देश के साथ मामला COMPAT को भेजकर अपीलों का निपटारा कर दिया। इसके अतिरिक्त, निर्माणकर्ता को 30 अप्रैल 2005 तक 15 प्रतिशत चक्रवृद्धि ब्याज पर काम किए गए मुआवजे का भुगतान करने का निर्देश दिया गया था। कम्पैट को रिमांड पर जिस अंतिम मुद्दे पर विचार करना था, वह यह था कि क्या कोई मुआवजा होना चाहिए और यदि ऐसा है, तो 30 अप्रैल 2005 के बाद देय राशि क्या होनी चाहिए और क्या सिटीबैंक खाताधारक को कोई ब्याज देने के लिए उत्तरदायी था।

एन. सी. एल. ए. टी का विवादित आदेश

9. रिमांड के बाद, शिकायतकर्ता ने सिटीबैंक को प्रतिवादी के रूप में शामिल किया। सभी उत्तरदाताओं को 1 मई 2005 से शिकायतकर्ता को देय ब्याज, यदि कोई हो, के भुगतान के संबंध में अपने-अपने हलफनामे दायर करने की अनुमति दी गई थी। विवादित आदेश द्वारा, एन. सी. एल. ए. टी. ने इस न्यायालय के आदेश की ओर ले जाने वाले तथ्यों पर ध्यान दिया, जिसमें यह भी शामिल है कि शिकायत 2005 में मूल भुगतान आदेश के साथ दायर की गई थी, जो सिटीबैंक द्वारा निर्माणकर्ता के कहने पर जारी किया गया था, जिसे शिकायतकर्ता द्वारा शुरू में वापस कर दिया गया था, लेकिन शिकायतकर्ता को वापस कर दिया गया था। एन. सी. एल. ए. टी. ने सिटीबैंक सहित पक्षों के हलफनामे और दलीलों पर भी विचार किया और नोट किया कि परिपत्रों के अनुसार, निर्माणकर्ता के खाते से ₹ 4,53,750 की राशि काट ली गई थी और सिटीबैंक को भी उस राशि पर कोई ब्याज नहीं मिला था, जब कम्पैट के समक्ष शिकायत लंबित थी। विवादित आदेश में कहा गया है कि शिकायतकर्ता के कानूनी प्रतिनिधियों को ₹ 4,53,750 का रिफंड नहीं मिला-COMPAT द्वारा 3 अगस्त 2015 के आदेश के संदर्भ में क्योंकि 16 जून 2016 को निर्माणकर्ता के खाते में धन वापस जमा किया गया था और सिटीबैंक द्वारा 16 जून 2016 को एक नया भुगतान आदेश (संख्या 262910) जारी किया गया था। अंततः उस राशि को इस अदालत के 8 और 26 अप्रैल 2016 के आदेशों के अनुपालन में 7 मई 2016 को शिकायतकर्ता को सौंप दिया गया। एन. सी. एल. ए. टी. ने विवादित आदेश द्वारा निम्नानुसार निर्देश दिया:

"तदनुसार यह पाया गया है कि 4,53,750 रुपये की मूल राशि के भुगतान के संबंध में 3 अगस्त, 2015 के आदेश के संदर्भ में COMPAT के निर्देश का 7 मई, 2016 तक पालन नहीं किया गया था। इसे ध्यान में रखते हुए, शिकायतकर्ता के कानूनी प्रतिनिधि 1 मई, 2005 से 7 मई, 2016 तक की मूल राशि पर चक्रवृद्धि ब्याज के रूप में 15 प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से उत्तरदाता संख्या 1 और 2 से

संचित बकाया की प्राप्ति तक मुआवजे के हकदार होंगे (अर्थात्, निर्माणकर्ता) "

शिकायतकर्ता की दलीलें

10. शिकायतकर्ता की ओर से दलीलें दोनों अपीलों के लिए समान थीं। यह आग्रह किया गया कि एन. सी. एल. ए. टी. त्रुटियां में पड़ गया क्योंकि वह यह समझने में विफल रहा कि चूंकि शिकायतकर्ता के कानूनी प्रतिनिधियों को 7 मई 2016 तक निर्माणकर्ता से ₹4,53,750/- की राशि का रिफंड नहीं मिला था, इसलिए उक्त मूल राशि पर ब्याज 4 अक्टूबर 1993 से राशि की प्राप्ति की तारीख यानी 7 मई 2016 तक चलना चाहिए।

11. यह तर्क दिया गया कि एक बार जब न्यायाधिकरण ने पाया कि निर्माणकर्ता गलत था-एक ऐसा निर्धारण जिसे इस अदालत ने बरकरार रखा था, जिसमें कहा गया था कि शिकायतकर्ता चक्रवृद्धि ब्याज के रूप में मुआवजे का हकदार था-उस निर्देश को अपने तार्किक अंत तक ले जाना था, जिसका अर्थ था कि ₹ 4,53,750 की राशि पर ब्याज भी निर्माणकर्ता के पास जमा किए जाने की तारीख (1993 में) से राशि प्राप्त होने तक देय था। मामले की सभी परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए यह एकमात्र प्रतिस्थापन और न्यायसंगत आदेश था।

12. यह प्रस्तुत किया गया था कि निर्माणकर्ता का यह तर्क कि उसके खाते से राशि काट ली गई थी, और यह कि वह मूल भुगतान आदेश दाखिल करने के बारे में नहीं जानता था, स्वीकार नहीं किया जा सकता था। विद्वान वकील ने इस बात पर प्रकाश डाला कि इसके अलावा, निर्माणकर्ता ने शिकायतकर्ता द्वारा जमा की गई राशि का पूरा लाभ उठाया, और आवंटन रद्द करने के बाद, तुरंत दूसरे खरीदार को 21 लाख रुपये की काफी अधिक राशि के लिए फ्लैट आवंटित कर दिया। इस तथ्य पर निर्माणकर्ता द्वारा विवाद नहीं किया गया था। इसलिए शिकायतकर्ता को नुकसान में नहीं रखा जा सकता, क्योंकि निर्माणकर्ता के पास जमा की गई और रखी गई राशि कई गुना बढ़ गई थी। निर्माणकर्ता को नए आवंटितकर्ता/खरीदार से प्रतिफल प्राप्त करने का लाभ (दो गुणा से अधिक) था।

निर्माणकर्ता की दलीलें

13. निर्माणकर्ता ने शिकायतकर्ता की अपील के साथ-साथ अपनी अपील के जवाब में आग्रह किया कि शिकायतकर्ता द्वारा 30 अप्रैल 2005 का भुगतान आदेश प्राप्त होने के बाद इसमें कोई गलती नहीं की जा सकती है और इसे किसी भी दायित्व के साथ नहीं जोड़ा जा सकता है। निर्माणकर्ता के वरिष्ठ वकील ने यह आग्रह किया कि इस अदालत ने अप्रैल 2005 के बाद रिमांड को सावधानीपूर्वक प्रतिबंधित कर दिया था कि क्या उसकी ओर से किसी भी गलती या कमी के कारण कोई दायित्व उत्पन्न हुआ था, यह देखते हुए कि शिकायतकर्ता द्वारा भुगतान आदेश को भुनाया नहीं गया था। इस संबंध में, यह प्रस्तुत किया गया था कि सिटीबैंक ने स्पष्ट रूप से कहा था कि जब भुगतान आदेश जारी किया गया था, तो राशि निर्माणकर्ता के खाते से काट ली गई थी। बैंक ने यह भी कहा कि राशि पर कोई ब्याज अर्जित नहीं किया गया था, और भारतीय रिजर्व बैंक (इसके बाद, "आर बी आई") के सुझावों और दिशा निर्देशों के अनुसार अलग से रखा गया था। निर्माणकर्ता को पता चला कि भुगतान आदेश 29 अप्रैल 2016 को पहली बार एम. आर. टी. पी. आयोग के समक्ष दायर शिकायत का हिस्सा था, जब शिकायतकर्ता के वकील द्वारा एक बयान दिया गया था।

14. यह प्रस्तुत किया गया कि इस अदालत ने दर्ज किया कि भुगतान आदेश एम. आर. टी. पी. आयोग की फाइल में था, और परिणामस्वरूप इसके पुनर्विधीकरण की अनुमति दी गई। इन परिस्थितियों में, निर्माणकर्ता ने आयोग से संपर्क किया, जिसके परिणामस्वरूप पुनर्विधीकरण होता है और बाद में शिकायतकर्ता को प्रपत्र सौंप दिया जाता है।

15. इन सभी तथ्यों ने स्पष्ट रूप से स्थापित किया कि निर्माणकर्ता की कोई गलती नहीं थी; वास्तव में शिकायतकर्ता ने स्वीकार किया कि उसे 26 सितंबर 2005 के पत्र के माध्यम से निर्माणकर्ता द्वारा वापस किया गया भुगतान आदेश प्राप्त हुआ था। विद्वान वकील ने एम. आर. टी. पी. आयोग के समक्ष दलीलों पर भरोसा किया और बताया कि शिकायत के सूचकांक और उसके साथ दायर किए गए दस्तावेजों में कहीं भी मूल वेतन आदेश उल्लेखित या संदर्भित नहीं किया गया है।

16. यह प्रस्तुत किया गया था कि भुगतान आदेश के माध्यम से राशि वापस करने के बाद, निर्माणकर्ता को इसके बाद आगे ब्याज का भुगतान करने का कोई दायित्व नहीं था। यह प्रस्तुत किया गया था कि अगर तथ्य ऐसे होते कि राशि निर्माणकर्ता के पास होती या उसके खाते में पड़ी होती, तो शिकायतकर्ता को यह कहने में उचित माना जाता। हालांकि, एक बार जब राशि उसके खाते से अरहरित हो गई, और भुगतान आदेश शिकायतकर्ता को सौंप दिया गया, जिसने इसे वापस करने की मांग की, लेकिन उसके बाद, भुगतान आदेश वापस सौंप दिया गया, तो निर्माणकर्ता को जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सका।

17. निर्माणकर्ता के वकील ने सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (इसके बाद, "सी. पी. सी".) के आदेश XXI नियम 1 (4) और (5) पर भरोसा करते हुए कहा कि एक बार जब प्रश्रुत राशि का भुगतान बैंक के माध्यम से किया जाता है (यानी, बैंक द्वारा जारी किए गए एक साधन के माध्यम से, जैसे कि डिमांड ड्राफ्ट या पे ऑर्डर, चेक के विपरीत, "बैंक द्वारा निकासी") तो देयता समाप्त हो जाएगी। निर्माणकर्ता के वकील ने हिन्दुस्तान पेपर कार्पोरेशन लिमिटेड बनाम अनंत भट्टाचार्य और गुरप्रीत सिंह बनाम भारत संघ में निर्णयों पर भरोसा किया।

विश्लेषण और निष्कर्ष

18. इस अपील पर निर्णय लेने के लिए, तथ्यों के पूरे स्पेक्ट्रम को फिर से बताना और प्रतिद्वंद्वी विवादों का विश्लेषण करना अनावश्यक है, जहां तक वे 30 अप्रैल 2005 से पहले की अवधि के लिए निर्माणकर्ता के दायित्व से संबंधित हैं। इस मामले में न्यायाधिकरण के प्रेषण का दायरा, इस अदालत के अंतिम आदेश द्वारा पहले तय की गई अपील में परिभाषित किया गया था। इस अदालत ने यह ध्यान में रखते हुए कि शिकायतकर्ता द्वारा अदालत के समक्ष यह आग्रह करने के बाद कि भुगतान आदेश एम. आर. टी. आयोग में जमा किया गया था, निर्माणकर्ता ने पुनर्वैधीकरण के लिए आवेदन किया था, आगे उल्लेख किया कि लिखत बंध पत्र को 2016 में पुनर्वैधीकरण किया गया था और राशि 22 मई 2016 को निर्माणकर्ता के खाते में जमा की गई थी। इसके बाद अदालत ने डिमांड का दायरा निम्नलिखित शर्तों में तय किया:

“...”उस सीमित सीमा तक, हम मामलों को न्यायाधिकरण को वापस भेजने का प्रस्ताव करते हैं। अतः इन अपीलों का निपटारा इस प्रकार किया जाता है:

(1) सिटीबैंक एन. ए. का प्रतिनिधित्व उसके प्रबंधक, जीवन भारती भवन 124 कनॉट सर्कस, नई दिल्ली द्वारा प्रतिस्पर्धा अपीलीय न्यायाधिकरण, नई दिल्ली के समक्ष शिकायत में अतिरिक्त प्रतिवादी के रूप में किया जाएगा।

(2) भवननिर्माता, 30-04-2005 तक 15 प्रतिशत चक्रवृद्धि ब्याज की दर से निर्धारित मुआवजे का भुगतान करेगा।

(3) क्या कोई मुआवजा होना चाहिए, और यदि ऐसा है, तो 30-04-2005 के बाद देय राशि क्या होनी चाहिए, और क्या सिटीबैंक न्यायाधिकरण द्वारा खाताधारक (एस. आई. सी.) को ब्याज में भुगतान करने के लिए उत्तरदायी है।

उपरोक्त सीमित सीमा तक हम मामलों को प्रतिस्पर्धा अपीलीय न्यायाधिकरण, नई दिल्ली को भेजते हैं।

न्यायाधिकरण तक सीमित मुद्दों के संबंध में सभी उपलब्ध दलीलों को लेने के लिए पक्षकारों के लिए यह खुला रहेगा।”

19. उपरोक्त से यह स्पष्ट है कि 30 अप्रैल 2005 के दायित्व के संबंध में, इस अदालत ने कम्पैट के निष्कर्षों की पुष्टि की थी और शिकायतकर्ता के कानूनी उत्तराधिकारियों की दलीलों को भी इस हद तक नकार दिया था कि चक्रवृद्धि ब्याज के अलावा अलग से मुआवजा देय था। इसलिए निर्माणकर्ता को 1993 से 2005 तक की पूरी अवधि के लिए 15 प्रतिशत प्रति वर्ष के मुआवजे के रूप में चक्रवृद्धि ब्याज का भुगतान करने का निर्देश दिया गया था। चूंकि इस अदालत को इस तथ्य से अवगत कराया गया था कि शिकायतकर्ता ने एम. आर. टी. पी. आयोग के समक्ष भुगतान आदेश जमा किया था, इसलिए उसने सिटीबैंक से विवरण मांगना उचित समझा। हलफनामे और उसके समक्ष

रखी गई सामग्री पर विचार करने के बाद, इस अदालत ने निर्णय लिया कि उचित तरीका यह होगा कि मामले को इस बात पर विचार करने के लिए सीमित किया जाए कि क्या 2005 के बाद की अवधि के लिए, निर्माणकर्ता को कोई देयता संलग्न की जा सकती है। रिमांड के सीमित दायरे के लिए यही तर्क था।

20. अभिलेख पर मौजूद सामग्री से पता चलता है कि इस मामले में, नोटिस जारी करने के बाद, शिकायतकर्ता ने 7 सितंबर 2005 के पत्र की आड़ में प्राप्त भुगतान आदेश को वापस कर दिया, हालांकि, निर्माणकर्ता (शिकायतकर्ता के नोटिस के जवाब में) ने 26 सितंबर 2005 के पत्र द्वारा नोटिस में निहित आरोपों से इनकार किया और ₹ 4,53,750 के लिए वेतन आदेश और ₹1 लाख के लिए बैंकर का चेक भी वापस कर दिया। यह भी स्पष्ट है कि 7 अक्टूबर 2005 को शिकायत दर्ज की गई थी। शिकायत की एक प्रति अभिलेख है। दिलचस्प बात यह है कि इसमें भुगतान आदेश का कोई उल्लेख नहीं है, न ही यह कहा गया है कि शिकायतकर्ता ने अभिवचन के साथ मूल रूप से भुगतान आदेश दायर किया है। यह एक निर्विवाद तथ्य है। यहां तक कि निर्माणकर्ता की अपील में शिकायतकर्ता द्वारा दायर जवाबी हलफनामे में कहा गया है कि वह:

“अदालत के विरोध के तहत शिकायत के साथ 30.04.2005 के भुगतान आदेश भी रजिस्ट्री में जमा कर दिए।”

21. चूंकि शिकायत में अभिवचनों में भुगतान आदेश का उल्लेख नहीं था, जो शिकायत के साथ मूल में संलग्न किया गया था, इसलिए निर्माणकर्ता का जवाब भी इस पहलू पर चुप था। यह 3 फरवरी 2006 को निर्माणकर्ता द्वारा दायर एम. आर. टी. पी. आयोग के समक्ष शिकायत के जवाब को पढ़ने से स्पष्ट होता है। इसी तरह, एम. आर. टी. पी. आयोग द्वारा जारी और निर्माणकर्ता द्वारा दायर पूछताछ की सूचना (25 जनवरी 2007 के हलफनामे द्वारा समर्थित) का जवाब भी भुगतान आदेश का संकेत नहीं देता है।

22. इस अदालत के समक्ष पिछली कार्यवाही में, शिकायतकर्ता की अपील में, इस अदालत का 29 अप्रैल 2016 का आदेश इस प्रकार है:

"अपीलार्थी के विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया कि प्रत्यर्थियों द्वारा प्रस्तुत मांग मसौदे पहले ही एम. आर. टी. पी. आयोग के समक्ष जमा किए जा चुके हैं। उत्तरदाता राशि की निकासी के लिए प्रतिस्पर्धा आयोग का रुख करने के लिए स्वतंत्र हैं।

हम अपीलार्थी का बयान दर्ज करते हैं कि यदि उत्तरदाताओं द्वारा ऐसा प्रयास किया जाता है, तो अपीलार्थी मसौदे/राशियों को वापस लेने पर आपत्ति नहीं करेगा।"

23. इस अदालत द्वारा दी गई अनुमति के संदर्भ में, उस आदेश के माध्यम से, निर्माणकर्ता ने COMPAT के समक्ष एक आवेदन दायर किया, जिसने 18 मई 2016 को निम्नलिखित निर्देश जारी किए:

"यह प्रतिवादी संख्या 1 और 2 की ओर से डॉ. (श्रीमती) मंजीत कौर मोंगा के पक्ष में आहरित 4,53,750 रुपये के भुगतान आदेश संख्या 885894 दिनांक 30.04.2005 को जारी करने के लिए एक आवेदन है ताकि उसका पुनर्वैधीकरण किया जा सके डॉ. (श्रीमती) मंजीत कौर मोंगा के कानूनी प्रतिनिधियों के नाम पर।

आवेदकों के विद्वान वकील श्री आदित्य नारायण का कहना है कि उनके मुताबिक संतुष्ट हो जायेंगे यदि 2005 में जमा किए गए भुगतान आदेश को उनके मुवक्किल को नवीनीकरण के उद्देश्य से वापस कर दिया जाता है, यदि कोई हो, कानून के अनुसार मूल शिकायतकर्ता के प्रतिनिधियों के विद्वान वकील का कहना है कि उन्हें कोई आपत्ति नहीं है।

उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, आवेदन की अनुमति है। न्यायाधिकरण की रजिस्ट्री में पड़े मांग मसौदा संख्या 885894 दिनांकित 30.04.2005 को आवेदकों को वापस कर दिया जाए।"

24. ये घटनाक्रम अभिलेख का हिस्सा थे, और अदालत को उनके बारे में पता था जिसके परिणामस्वरूप 18 जुलाई 2017 के अंतिम आदेश में दीवानी अपीलों का निपटारा करते हुए इन तथ्यों को नोट किया गया था:

"अपीलों की सुनवाई के दौरान एक और दिलचस्प मुद्दा विचार के लिए सामने आया। यह इस न्यायालय के संज्ञान में लाया गया है कि जब बिल्डर कंपनी, एसएलपी (सी) Nos. 10484-10485/2016 से उत्पन्न अपीलों में अपीलार्थी ने सिटीबैंक से 30.04.2005 को भुगतान आदेश लिया था, तो भुगतान आदेश द्वारा कवर की गई रु. 4,53,750 की राशि वास्तव में उनके चालू खाते से काट ली गई थी। लेकिन साथ ही, प्राप्तकर्ता द्वारा राशि का भुगतान/प्राप्त नहीं किया गया था। तत्काल मामले में, खाता धारक ने भुगतान आदेश को रद्द कर दिया और राशि को फिर से जमा करने का अनुरोध किया और तदनुसार, यह देखा गया कि सिटीबैंक ने केवल 22.06.2016 पर खाते में राशि को फिर से जमा किया है। खाताधारक कंपनी का यह तर्क है कि जिस अवधि के लिए पैसा बैंक के पास था, खाताधारक ब्याज का हकदार है और यह वह मुआवजा हो सकता है जिसका भुगतान आवंटन रद्द होने के बाद की अवधि के लिए सिविल अपील Nos. 5032-33/2016 में अपीलार्थी को किया जा सकता है। हम, निश्चित रूप से, भवन निर्माता के इस निवेदन पर ध्यान दे सकते हैं कि धारा 144 सी. पी. सी. के तहत पुनर्स्थापन के सिद्धांतों के संदर्भ में और पुनर्स्थापन के सामान्य सिद्धांत पर, भवन निर्माता को अनुचित अन्याय में नहीं डाला जा सकता है और अपीलकर्ता को अनुचित लाभ नहीं लेना चाहिए जैसा कि इस न्यायालय द्वारा सिटीबैंक एन. ए. बनाम. हितेन पी. दलाल और अन्य, (2016) 1 एस. सी. सी. 411, जैसा कि भवन निर्माता की ओर से पेश विद्वान वकील द्वारा प्रचार किया गया था।

7. सिटीबैंक की ओर से पेश विद्वान वकील ने अतिरिक्त हलफनामे के लिए हमारे संदर्भ को आमंत्रित करते हुए तर्क दिया कि यह एक तथ्य है कि भवन निर्माता के चालू खाते से पैसा 30.04.2005 को काटा गया है। और इसका भुगतान प्राप्तकर्ता को नहीं किया गया है। लेकिन, साथ ही, यह नहीं कहा जा सकता है कि बैंक द्वारा धन का उपभोग किया गया था, क्योंकि एक भुगतान आदेश होने के नाते, किसी भी समय लिखित बंधपत्र प्रस्तुत किया जाता है, बैंक उसी का सम्मान करने के लिए बाध्य था और इसलिए, केवल प्राप्तकर्ता या खाता धारक की ओर से साधन को भुनाने या रद्द करने के लिए चूक के लिए, बैंक पर कोई ब्याज नहीं लगाया जा सकता है। बैंक की ओर से पेश विद्वान वकील द्वारा यह भी प्रस्तुत किया जाता है कि वे उस संबंध में भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा जारी निर्देशों द्वारा शासित हैं।

8. हम न्यायाधिकरण के आदेश से पाते हैं कि दोनों मुद्दों पर ध्यान नहीं दिया गया है, जाहिरा तौर पर क्योंकि इन पहलुओं का प्रचार नहीं किया गया है और जाहिर है क्योंकि सिटीबैंक न्यायाधिकरण के समक्ष नहीं था।”

25. वर्तमान में हमारे समक्ष निर्माणकर्ता की अपील के लिए शिकायतकर्ता द्वारा दायर जवाबी हलफनामे में निम्नलिखित कथन शामिल हैं:

"यह दोहराया जाता है कि उक्त भुगतान आदेश अपीलार्थी संख्या 2 द्वारा प्रत्यर्थी संख्या 1 को दिनांकित 30.04.2005 के रद्द करने वाले पत्र के माध्यम से भेजा गया था। इसके बाद, प्रत्यर्थी सं. 1 द्वारा दिनांकित 07.09.2005 की कानूनी नोटिस के माध्यम से अपीलार्थियों को वापस कर दिया गया, जिसके बाद अपीलार्थियों ने एक बार फिर दिनांकित 26.09.2005 कानूनी नोटिस के अपने जवाब के माध्यम से प्रत्यर्थी सं. 1 को वापस कर दिया। यह प्रस्तुत किया जाता है कि प्रत्यर्थी संख्या 1 ने तब विद्वत एम.आर.टी.पी. के

समक्ष एम. आर. टी. पी. अधिनियम की धारा 36 के तहत शिकायत दर्ज की। विद्वत एम. आर. टी. पी. आयोग के समक्ष दिनांक 30.4.2005 उक्त भुगतान आदेश उक्त शिकायत के साथ विरोध में जमा किया।”

26. अभिवचनों और अन्य सामग्रियों पर विचार इस तथ्य की ओर इशारा करता है कि शिकायतकर्ता ने एम. आर. टी. पी. आयोग के समक्ष कहीं भी यह नहीं कहा कि मूल भुगतान आदेश अभिवचनों के साथ संलग्न था। दिलचस्प बात यह है कि शिकायत के सूचकांक या कवर पेज को निर्माणकर्ता की 12 फरवरी 2018 (एन. कलैट से पहले) की अतिरिक्त लिखित प्रस्तुतियों का हिस्सा बनाया गया था। शिकायत में दलीलों के लिए यह सूचकांक भुगतान आदेश का उल्लेख नहीं करता था। यह एक पल के लिए भी विवादित नहीं हो सकता है कि शिकायतकर्ता शायद इस विश्वास में थी कि इस तरह के मूल भुगतान आदेश को दाखिल करने से यह स्थापित हो गया कि वह धनवापसी प्राप्त करने में रुचि नहीं रखती थी, लेकिन केवल फ्लैट पर कब्जा करने में रुचि रखती थी। फिर भी यह उसके लिए एक उचित आदेश के लिए वकील के माध्यम से आवेदन करना आवश्यक था ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि राशि ब्याज वाले खाते में जमा की गई थी। वह कदम दुर्भाग्य से उसे नहीं लिया गया-शायद उसे ऐसा करने की सलाह नहीं दी गई थी। 29 अप्रैल 2016 को पहली बार जब पिछली कार्यवाही में इस पर प्रकाश डाला गया था, तभी निर्माणकर्ता ने पुनर्वैधीकरण के लिए COMPAT को आवेदन करने की अनुमति मांगी और प्राप्त की। उस कदम को सुविधाजनक बनाने का आदेश 18 मई 2016 को दिया गया था और अंततः 22 जून 2016 को भुगतान आदेश को फिर से मान्य किया गया था।

27. विवादित आदेश से, यह स्पष्ट है कि न्यायाधिकरण ने सिटीबैंक के स्पष्टीकरण को स्वीकार कर लिया कि चूंकि प्रश्नगत वेतन आदेश अप्रभावी हो गया था, इसलिए इसकी आय/धन को उसके 'लावारिस खाते' में स्थानांतरित कर दिया गया था, और भारतीय रिज़र्व बैंक के निर्देशों के संदर्भ में कोई ब्याज आकर्षित नहीं किया गया था। बैंक ने यह भी कहा था कि निर्माणकर्ता के अनुरोध पर 26 मई 2016 के अपने पत्र के माध्यम से

भुगतान आदेश को रद्द कर दिया गया था और 16 जून 2016 को धन को निर्माणकर्ता के खाते में वापस जमा कर दिया गया था। यह भी देखा गया कि भुगतान आदेश जारी करने के लिए राशि निर्माणकर्ता के चालू खाते से काट ली गई थी। इन तथ्यों को ध्यान में रखने के बाद, ऐसा प्रतीत होता है कि न्यायाधिकरण इस परिस्थिति से प्रभावित हुआ है कि निर्माणकर्ता को अनुचित व्यापार व्यवहार के लिए उत्तरदायी ठहराया गया था, और इस अदालत द्वारा पुष्टि किए गए मुआवजे (COMPAT के पिछले आदेशों के संदर्भ में) का भुगतान करने का निर्देश दिया गया था, अर्थात्, ₹ 4,53,750-पर 15 प्रतिशत चक्रवृद्धि ब्याज।

28. इस अदालत की राय में, विवादित आदेश ने अपने निष्कर्षों को कानून के किसी भी सिद्धांत पर नहीं रखा है, किसी भी वैधानिक प्रावधान से बहुत कम। ऐसा प्रतीत होता है कि न्यायाधिकरण शिकायतकर्ता की दुर्दशा से पूरी तरह प्रभावित हुआ है। ऐसा करने में, इसने इस तथ्य पर उचित विचार नहीं किया कि निर्माणकर्ता के खाते से ₹ 4,53,750-आहरित किया गया था। शिकायतकर्ता ने शायद उचित सलाह या निर्देश की कमी के कारण मूल भुगतान आदेश दायर किया। जाहिर तौर पर, एम. आर. टी. पी. आयोग से समकालीन रूप से कोई आदेश नहीं मांगा गया था, जो प्राप्त धन के संबंध में शिकायतकर्ता के हितों की रक्षा करेगा। यह सुनिश्चित करते हुए भी कि फ्लैट के प्रति पात्रता के संबंध में गुण-दोष पर उनकी दलीलें संरक्षित हैं। कई रास्ते/विकल्प उपलब्ध थे। सबसे पहले, शिकायतकर्ता भुगतान आदेश की आय को किसी खाते में जमा करने की मांग कर सकता था, जिसे आयोग के निबंधक द्वारा बनाए रखा जाएगा। दूसरा, वह एक 'पूर्वाग्रह के बिना' आदेश की मांग कर सकती थी जिससे वह राशि को भुनाने में सक्षम हो सकती थी, और साथ ही यह सुनिश्चित कर सकती थी कि उसका दावा उस गणना पर विफल न हो। तीसरा, समान रूप से, वह उचित आदेश की मांग कर सकती थी कि राशि को निर्माणकर्ता द्वारा बनाए रखा जाए, जो आवश्यक होने की स्थिति में, आयोग या न्यायाधिकरण द्वारा उचित समझे जाने वाले ब्याज के साथ और न्याय के हित में मूलधन का भुगतान करने का निर्देश दिया जा सकता था। चूंकि इन विकल्पों में से कोई भी एक नहीं चुना गया था, और इस तथ्य को प्रश्नगत रखते हुए कि विचाराधीन राशि निस्संदेह निर्माणकर्ता के चालू खाते से आहरित की गई थी, इस बात पर चर्चा होनी चाहिए थी कि

लागू कानूनी प्रावधान क्या था जिसने निर्माणकर्ता पर किसी भी दायित्व को निर्धारित किया। यह अधिक महत्वपूर्ण था क्योंकि वर्तमान मामले में न्यायाधिकरण ने ब्याज (या इसके बजाय, देयता की अनुपस्थिति, भले ही राशि निस्संदेह लगभग 11 वर्षों से बैंक के पास थी) के बारे में सिटीबैंक के स्पष्टीकरण को स्वीकार कर लिया है।

29. इस अदालत ने गुरप्रीत सिंह (ऊपर) मामले में सी. पी. सी. 8 के आदेश XXI के संदर्भ में निम्नलिखित टिप्पणी की (जो फरमानों के तहत भुगतान के तरीकों से संबंधित है और यह भी निर्धारित करता है कि कब ब्याज "चलना" बंद हो जाएगा (यानी, देय नहीं होगा): जैसा आगे है-

"इस प्रकार, धन आदेशों या पंचाट आदेशों के निष्पादन के मामलों में, या बल्कि, बंधक आदेशों के अलावा अन्य आदेशों में, जमा की गई राशि पर जमा राशि की सीमा तक ब्याज चलना बंद हो जाता है। यह सच है कि यदि राशि कम हो जाती है, तो डिक्री धारक पहले ब्याज के लिए, फिर लागत के लिए और फिर डिक्री के तहत देय मूल राशि के लिए राशि का विनियोग करके विनियोग के नियम को लागू करने का हकदार हो सकता है। लेकिन तथ्य यह है कि जमा की सीमा तक, डिक्री धारक को उस पर कोई और ब्याज देय नहीं है और डिक्री धारक द्वारा पुनः विनियोग का दावा करने का कोई सवाल ही नहीं है जब यह पाया जाता है कि उसके पास अधिक राशि बकाया है और वह भी निर्णय देनदार द्वारा जमा की जाती है। दूसरे शब्दों में, यह योजना जमा द्वारा हुई संतुष्टि को फिर से खोलने पर विचार नहीं करती है। मूलधन के लिए विनियोजित राशि पर आगे कोई ब्याज नहीं लगेगा।

एक उदाहरण के रूप में, हम निम्नलिखित स्थिति ले सकते हैं। मान लीजिए, रुपये की राशि के लिए एक डिक्री पारित की जाती है। 5,000/- ब्याज और लागतों के साथ निचली अदालत द्वारा और निर्णय देनदार इसे जमा करता है और संहिता के आदेश XXI नियम 2 के तहत निष्पादन अदालत से संपर्क करके या संहिता के आदेश

XXI नियम 1 के तहत डिक्री धारक द्वारा लिए गए निष्पादन में जमा करके डिक्री धारक को नोटिस देता है। डिक्री धारक ट्रायल कोर्ट के डिक्री से संतुष्ट नहीं है। वह अपील में जाता है और अपीलीय अदालत डिक्री राशि को बढ़ाकर रु 10, 000/- ब्याज और लागत के साथ कर देता है। आदेश XXI नियम 1 के संदर्भ में नियम, जैसा कि अब है, आदेश XXIV की पृष्ठभूमि में स्पष्ट रूप से होगा कि निर्णय देनदार का आगे का दायित्व ब्याज देय होने की तारीख से उसपर ब्याज और अपील की लागत के साथ अपीलीय न्यायालय द्वारा निर्धारित केवल 5000 रुपये की अतिरिक्त राशि जमा करना है। डिक्री धारक को यह कहने का अधिकार नहीं होगा कि वह 5000/- रुपये की राशि पर भी आगे ब्याज प्राप्त कर सकता है। और यह आदेश निचली अदालत द्वारा दिया गया है और अपीलीय अदालत द्वारा राशि की वृद्धि से पहले ही निर्णय देनदार द्वारा जमा किया गया है या वह लेनदेन को फिर से खोल सकता है और रुपये पर पहले ब्याज का पुनः विनियोग कर सकता है। 10, 000/-रु लागत और फिर मूलधन और पूरी शेष राशि पर फिर से ब्याज का दावा करें। निश्चित रूप से, दोनों चरणों में, यदि जमा में कमी है, तो डिक्री धारक पहले ब्याज के लिए जमा करने का हकदार हो सकता है, फिर लागत और मूलधन के लिए शेष राशि के लिए। लेकिन यह कहने से अलग है कि निचली अदालत द्वारा निर्धारित राशि जमा करने के बावजूद, निर्णय देनदार अभी भी पूरी मूल राशि पर ब्याज के लिए उत्तरदायी होगा, यदि अपीलीय अदालत उसे बढ़ाती है और बढ़ी हुई राशि पर ब्याज देती है।”

30. इस अदालत के एक अन्य फैसले वी. कला भारती और अन्य बनाम द ओरिएन्टल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड में इस नियम की व्याख्या की गई थी।

“उपरोक्त प्रावधानों के एक समान्य अवलोकन से यह स्पष्ट हो जाता है कि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश XXI नियम 1 का दायरा यह है

कि निर्णय देनदार को इसके उप-नियम (1) में निर्दिष्ट तरीकों में से एक में डिक्लीटल राशि का भुगतान करना आवश्यक है। नियम 1 के उप-नियम (2) में प्रावधान है कि एक बार उप-नियम (1) के तहत भुगतान किए जाने के बाद, निर्णय देनदार का कर्तव्य है कि वह अदालत के माध्यम से डिक्ली धारक को या सीधे उसे पंजीकृत पोस्ट पावती द्वारा नोटिस दे। नियम 1 का उप-नियम (3) केवल यह इंगित करता है कि यदि डाक धन आदेश द्वारा या उप-नियम (1) के खंड (क) या खंड (ख) के तहत किसी बैंक के माध्यम से धन का भुगतान किया जाता है, तो ऐसा भुगतान करते समय कुछ विवरणों को सटीक रूप से शामिल करने की आवश्यकता होती है। नियम 1 के उप-नियम (4) और (5) में कहा गया है कि जिस तारीख से, उप-नियम (1) के खंड (ए) या (सी) के तहत राशि का भुगतान किए जाने की स्थिति में ब्याज देना बंद हो जाएगा, ब्याज जैसा कि उप-नियम (2) के तहत संकेत दिया गया है; जबकि उप-नियम (1) के खंड (बी) के तहत उल्लिखित किसी भी तरीके से डिक्ली धारक को अदालत से बाहर भुगतान करने की स्थिति में, ऐसे भुगतान की तारीख से ब्याज देना बंद हो जाएगा।”

31. आदेश XXI के प्रावधान दीवानी अदालत के फरमानों पर लागू होते हैं। हालाँकि, वे एक ठोस नीति सिद्धांत को मूर्त रूप देते हैं, कि यदि राशि जमा की जाती है, या डिक्ली धारक या इसके हकदार व्यक्ति को भुगतान किया जाता है, तो राशि का हकदार व्यक्ति बाद में उस पर ब्याज नहीं ले सकता है। यह विवेक का एक नियम है, क्योंकि देनदार, या राशि का भुगतान करने या उसे वापस करने के लिए आवश्यक व्यक्ति, एक दायित्व के तहत है। यह सुनिश्चित करने के लिए कि देय राशि को प्राप्त करने के हकदार व्यक्ति के निपटान में रखा गया है। एक बार जब यह पूरा हो जाता है (भुगतान के रूप में, विभिन्न तरीकों के माध्यम से, जिसमें एक बैंकर का चेक, या भुगतान आदेश या डिमांड ड्राफ्ट शामिल है, जिनमें से सभी के लिए खाता धारक/देनदार को बैंक को भुगतान करने की

आवश्यकता होती है, जो तब साधन जारी करेगा) तो निविदा, या 'भुगतान' पूरा हो जाता है।

32. वर्तमान मामले में, शिकायतकर्ता को पता था कि निर्माणकर्ता द्वारा उसे भुगतान आदेश दिया गया था; फिर भी उसने अपनी शिकायत के साथ मूल भुगतान आदेश दायर किया, और संबंधित समय पर एम. आर. टी. पी. आयोग से कोई आदेश नहीं मांगा। शिकायत में दलीलों में यह खुलासा नहीं किया गया कि भुगतान आदेश आयोग में दायर किया गया था, ताकि निर्माणकर्ता उचित रूप से जवाब दे सके। इन परिस्थितियों में, निर्माणकर्ता का यह तर्क कि आदेश XXI, नियम 4 सी. पी. सी. में सन्निहित नियम लागू है, योग्य है। निर्माणकर्ता को 30 अप्रैल 2005 के बाद ₹ 4,53,750 की राशि पर ब्याज का भुगतान करने के लिए किसी भी कानूनी दायित्व के साथ नहीं रखा जा सकता है।

33. इस अदालत की यह भी राय है कि शिकायतकर्ता का यह तर्क कि निर्माणकर्ता की चूक के कारण, उसके साथ अन्याय किया गया था, और इस प्रकार वह ब्याज प्राप्त करने का हकदार था, प्रबल नहीं हो सकता है। अभिलेख कहीं भी निर्माणकर्ता की ओर से किसी भी गलती का खुलासा नहीं करते हैं; दूसरी ओर, शिकायतकर्ता ने अपने हितों की रक्षा के लिए कदम नहीं उठाए। सैलेन कृष्ण मजूमदार बनाम मलिक लाभु मसीह के मामले में इस अदालत ने यह निर्णय दिया है कि ऐसे मामलों में, भले ही इक्विटी समान हो, अदालत को हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए:

“उन्होंने कहा, दोनों पक्षों द्वारा समानता का दावा किया जा रहा है। इन परिस्थितियों में हमारे पास कोई अन्य विकल्प नहीं है, सिवाय इसके कि हम नुकसान को वहीं छोड़ दें जहां वह पड़ता है। जैसा कि कहावत है, 'समान रूप से यह स्थिति संभावित है'। जहां इक्विटी समान है, वहां कानून का बोलबाला होना चाहिए। इसलिए, प्रत्यर्थी का खरीदने का अधिकार प्रबल होना चाहिए।”

वर्तमान मामले में भी, शिकायतकर्ता निर्माणकर्ता से ब्याज का दावा नहीं कर सकता है, जिसने भुगतान आदेश वापस कर दिया था। जैसा कि चर्चा की गई है, शिकायत दर्ज करने के समय, वह यह सुनिश्चित करने के लिए विभिन्न विकल्पों में से एक को चुन सकती थी कि उसे प्रस्तुत की गई राशि को बाद में ब्याज का दावा करने के उसके अधिकारों के प्रति पूर्वाग्रह के बिना ब्याज वाले खाते में रखा गया था। इन परिस्थितियों में, उसकी सहायता के लिए कोई हिस्सेदारी नहीं दी जा सकती है।

34. जहाँ तक शिकायतकर्ता की अपील का संबंध है, तर्क यह है कि विवादित आदेश त्रुटियांपूर्ण है, क्योंकि न्यायाधिकरण को निर्देश देना चाहिए था कि निर्माणकर्ता को 4 अक्टूबर 1993 से इसकी प्राप्ति की तारीख यानी 7 मई 2016 तक ₹ 4,53,750 की राशि पर ब्याज का भुगतान करने का निर्देश दिया जाना चाहिए था। यह याचिका स्पष्ट रूप से असमर्थनीय है, क्योंकि पिछली अवधि के लिए देय ब्याज पिछली कार्यवाही में समाप्त हो गया था। शिकायतकर्ता ने किसी भी नियम या बाध्यकारी कानूनी सिद्धांत की ओर इशारा नहीं किया जो निर्माणकर्ता को इस तरह के ब्याज का भुगतान करने के लिए बाध्य करता है, या इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में इस तरह के दायित्व कैसे उत्पन्न हुए, यह दर्शाते हुए विवादित आदेश में निर्देश को उचित ठहराता है।

35. इस मामले को छोड़ने से पहले, इस अदालत की राय है कि सभी अदालतों और न्यायिक मंचों को उन मामलों में दिशानिर्देश तैयार करने चाहिए जहां अदालत/न्यायाधिकरण के कार्यालय/रजिस्ट्री में राशि जमा की जाती है, कि ऐसी राशि होनी चाहिए। अनिवार्य रूप से किसी बैंक या किसी वित्तीय संस्थान में जमा किया जाए, ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि भविष्य में कोई नुकसान नहीं होगा। इस तरह के दिशानिर्देशों में स्थितियों को भी शामिल किया जाना चाहिए जहां संबंधित वादी केवल दस्तावेज (भुगतान आदेश, डिमांड ड्राफ्ट, बैंकर का चेक, आदि) दाखिल करता है। बिना किसी आदेश की मांग किए, ताकि वर्तमान मामले जैसी स्थितियों से बचा जा सके। इन दिशानिर्देशों को न्यायनिर्णायक शक्ति का प्रयोग करने वाले प्रत्येक न्यायालय, न्यायाधिकरण, आयोग, प्राधिकरण, एजेंसी आदि के उपयुक्त नियमों या विनियमों के रूप में सन्निहित किया जाना चाहिए।

36. उपरोक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, निर्माणकर्ता की अपील, यानी सी. ए. संख्या 1402019 की अनुमति है। आक्षेपित आदेश को इसके द्वारा खारिज किया जाता है। शिकायतकर्ता की अपील, यानी सी. ए. संख्या 4530/2019, खारिज कर दी जाती है। अर्थदंड पर कोई आदेश नहीं होगा।

[एम. आर. शाह], न्यायमूर्ति

[एस. रवींद्र भाट], न्यायमूर्ति

नई दिल्ली

31 जनवरी, 2023